(३५)

आचार्य श्रीरजनीश

वैचारिक क्रांति

★

जीवन जागृति केन्द्र
क्यों ? कैसे ? क्या ?

★

प्र. सं. मई' ७१ : २०००
४० पैसा

संकलन
श्री कस्तुरलाल गांधी
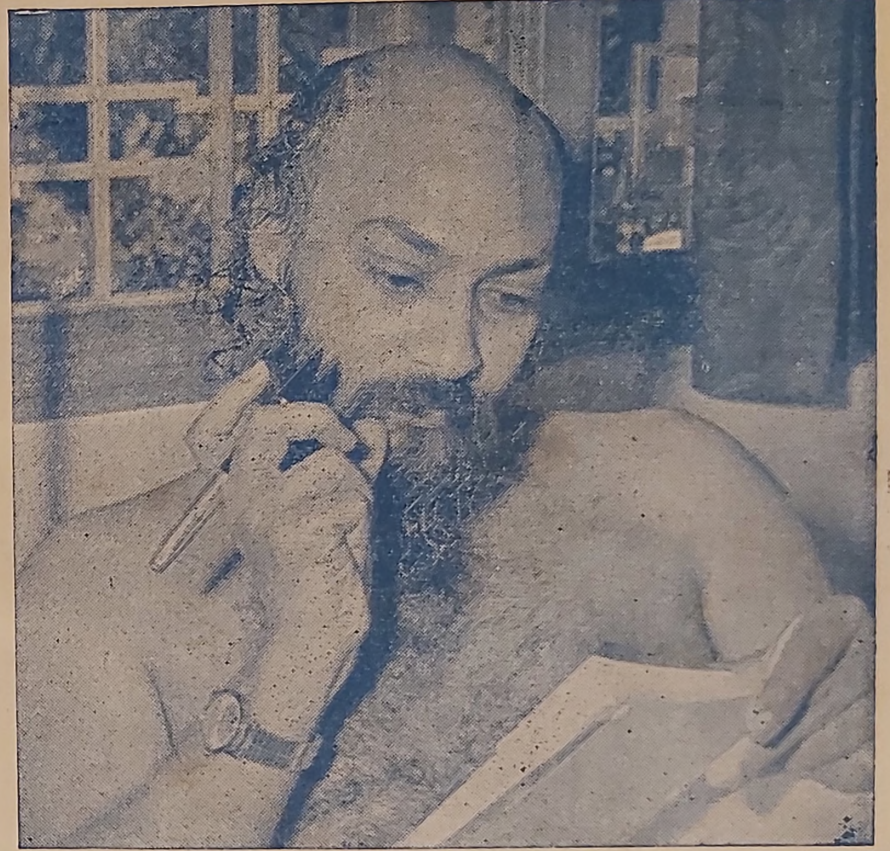
आचार्य श्रीरजनीश

आचार्य श्रीरजनीश

वैचारिक क्रान्ति
विषय : जीवन जागृति केन्द्र
स्थान : नारगोल शिविर

धर्म नितांत वैयक्तिक बात है। एक एक व्यक्ति के जीवन में घटित होती है। संगठन और भीड़ से उसका कोई संबंध नहीं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि और तरह के संगठन नहीं हो सकते हैं। सामाजिक संगठन हो सकते हैं। शैक्षणिक संगठन हो सकते हैं। नैतिक, सांस्कृतिक संगठन हो सकते हैं। राजनैतिक संगठन हो सकते है। **सिर्फ धार्मिक संगठन नहीं हो सकते।**

यह बात ध्यानमें रख लेनी जरूरी है, अगर मेरे आसपास इकट्ठे हुए मित्र कोई संगठन करना चाहते हैं तो वह संगठन धार्मिक नहीं होगा, और उस संगठन में सम्मिलित हो जाने से कोई मनुष्य धार्मिक नहीं हो जायगा। जैसे एक आदमी हिन्दू होनेसे धार्मिक हो जाता हैं, मुसलमान होनेसे धार्मिक हो जाता है। वैसे कोई जीवन जागृति केन्द्रके सदस्य होने से धार्मिक नहीं हो जाता।

धार्मिक होना दूसरी ही बात है। उसके लिये किसी संगठन के सदस्य होनेकी जरूरत नहीं है, बल्कि सच तो यह है कि जो किसी संगठनका, धार्मिक संगठन का सदस्य है, वह धार्मिक संगठनकी सदस्यता उसके धार्मिक होने में निश्चित ही बाधा बनेगी। जो आदमी हिन्दू है वह धार्मिक नहीं हो सकता। जो जैन है, वह भी धार्मिक

नहीं हो सकता, जो मुसलमान है वह भी धार्मिक नहीं हो सकता। क्योंकि संगठन में होने का अर्थ संप्रदाय में होना है। **संप्रदाय और धर्म विरोधी बातें है। संप्रदाय तोड़ता है, धर्म जोड़ता है।**

इसलिये पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि मेरे आसपास अगर, कोई भी संगठन खड़ा किया जाय तो वह संगठन धार्मिक नहीं। उसे धार्मिक समझके खड़ा करना गलत होगा। इसलिये जिन मित्रों ने कहा कि धार्मिक संगठन नहीं हो सकता, उन्होंने बिल्कुल ही ठीक कहा है। कभी भी नहीं हो सकता है। लेकिन उनको शायद भ्रांति है कि और तरह के संगठन नहीं हो सकते हैं। और तरह के संगठन हो सकते हैं। जीवन जागृति केन्द्र और तरह का संगठन है, धार्मिक नहीं।

इस समाज में इतनी बीमारियाँ हैं, इतने रोग हैं, इतने उपद्रव हैं, इतनी कुरूपता है कि जो मनुष्य भी धार्मिक हैं वे मनुष्य चुपचाप इस कुरूपता, इस गन्दगी, इस समाजकी मूर्खता को सहनेको तैयार नहीं हो सकते। जो मनुष्य धार्मिक है, वह बरदाश्त करनेको तैयार नहीं होगा कि ऐसा कुरूप समाज जिन्दा रहे और चलता रहे। जिस मनुष्यके जीवनमें थोड़ी सी भी धर्म की किरणें आयी हैं, वह ऐसे समाज को आमूल बदल देना चाहेगा।

जीवन जागृति केन्द्र धार्मिक संगठन नहीं है, बल्कि धार्मिक लोगोंका संगठन है, सामाजिक परिवर्तन और क्रान्ति के लिये। इसकी सदस्यता से कोई धार्मिक नहीं हो जाएगा, लेकिन जो लोग चाहते हैं कि समाजको, जीवनको, नीतिको, चलती हुई व्यवस्थाको, परंपराको बदला जाय, वे लोग इस संगठन के सदस्य हो सकते हैं, और संगठनको मजबूत बना सकते हैं। यह संगठन सामाजिक

क्रान्ति का संगठन होगा, धार्मिक नहीं। "Social Reform" के लिये, धार्मिक शान्ति के लिये नहीं, सामाजिक क्रान्ति के लिये। **यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि यह सामाजिक क्रान्ति का आंदोलन है।** और जो व्यक्ति थोड़ा सा भी प्रबुद्ध होगा, शान्त होगा, जीवन को देखेगा और समझेगा, तो यह इच्छा होगी उसकी तरफ से कि इस समाजको जैसा यह है वैसा ही चलने दे? **कोई भी धार्मिक मनुष्य इस समाजकी मौजूद स्थितिको बरदाश्त नहीं कर सकता।** सिर्फ अधार्मिक लोग ही बरदाश्त कर सकते हैं। वे जिनके प्राणों में कोई करुणा नहीं है वे इस समाज में चलती हुई क्रूरता को देख सकते हैं। वे जिनके जीवनमें प्रेम की कोई किरण नहीं है घृणा के इतने अन्धकार को सह सकते हैं। वे जिनके भीतर मनुष्यता मर गई है, वे ही अपने चारों तरफ मनुष्यता को मरी हुई देखते भी रहने को राजी हो सकते हैं।

या तो धार्मिक आदमी इस समाजको बदलेगा, बदलने की कोशिश करेगा, या अपनेको मिटा देगा। लेकिन इसी समाजमें रहनेकी तैयारी उसकी नहीं हो सकती। **तो जीवन जागृति केन्द्र एक संगठन होगा, धार्मिक संगठन नहीं, सामाजिक क्रांति के उथल पुथल के लिये एक संगठन** - यह एक आन्दोलन होगा। लेकिन यह आन्दोलन इस अर्थो में नहीं कि जिस तरह का महम्मद का आन्दोलन है कि आदमी मुसलमान हो जाय तो सब हो गया। जो मुसलमान है, वह मोक्ष पहुँच जायगा और जो नहीं, उसके लिये द्वार बन्द हो जायेंगे। इस तरह का यह संगठन नहीं होगा। उसका मोक्ष के साथ कोई भी संबन्ध नहीं।

मोक्षसे संगठनका संबंध कभी होता ही नहीं। वह व्यक्ति की निजी बात है, लेकिन जिन लोगों के जीवनमें थोड़ी भी शान्ति फलित

होगी, जिनके जीवन में थोड़ा सा प्रभुका प्रकाश आयेगा, क्या वे समाज को ऐसा ही देखते रहेंगे कि जैसा समाज है ? यह बर्दाश्त के बाहर है।

धार्मिक मनुष्य बुनियादी रूप से विद्रोही होगा, और आज तक दुनिया में धार्मिक मनुष्य विद्रोही नहीं हुआ तो उसका एक ही कारण है कि वह मनुष्य धार्मिक न रहा होगा। **धार्मिक आदमी Rebellious होगा ही, उसके जीवन में क्रान्ति होगी ही** । लेकिन क्रान्ति तो अकेले नहीं हो सकती, उसके लिये तो संगठन चाहिये। क्योंकि जब हम क्रान्ति करने चालते हैं तो क्रान्ति को रोकने वाली शक्तियाँ हैं, वे संगठित हैं। उनके खिलाफ एक आदमी का क्या अर्थ है ? क्रान्ति के विरोध में, जो प्रतिगामी Reactionary Forces हैं वे सब संगठित हैं। उनके खिलाफ एक आदमी का क्या प्रयोजन है ? क्या अर्थ है ? जिन्दगी में जो लोग गलत खड़े हैं वे संगठित खड़े हैं, और अच्छा आदमी यह सोचें कि सगठन की क्या जरूरत है ? तो वह बुरे आदमियों का साथी और सहयोगी बनता है।

यह ध्यान रखना चाहिये कि चोर और बदमाश सब संगठित हैं— राजनैतिक संगठित हैं। जिन्दगी को खराब करनेवाले सारे लोग सब संगठित हैं, और अच्छा आदमी सोचता है कि संगठन की क्या जरूरत ? तो इसका एक ही फल होगा कि यह अच्छा आदमी चाहे जानते ही, या न जानते ही बुरे आदमियों का एजेन्ट सिद्ध होगा, क्योंकि बुरे आदमियों के संगठित रूप बदलने के लिये अच्छे आदमियों को भी संगठनों की अत्यन्त अनिवार्य जरूरत है, किन्तु एक बात ध्यान में रखते हुए कि यह संगठन धार्मिक नहीं। इस संगठन का धर्म से सीधा संबन्ध नहीं। धार्मिक लोग इस संगठन, इस संगठन में

आ सकते हैं। लेकिन इस संगठन की सदस्यता से कोई धार्मिक नहीं होगा

सामाजिक क्रान्ति की दृष्टि को ध्यान में लेकर एक संगठन अत्यन्त जरूरी है। हमेशा यह दुर्भाग्य रहा है कि बुरे आदमी सदा से संगठित रहे हैं। अच्छा आदमी हमेशा अकेला खडा रहा और इसलिये अच्छा आदमी हार गया। अच्छा आदमी जीत नहीं सका। अच्छा आदमी आगे भी जीत नहीं सकेगा। अच्छे आदमी को भी संगठित होना जरूरी है। बुराई की ताकतें इकट्ठी । उन ताकतों के खिलाफ उतनी ही बड़ी ताकतें खड़ी करनी आवश्यक हैं।

तो, मैं धार्मिक संगठन के एकदम विरोध में हूँ, लेकिन संगठन के विरोध में नहीं। इस देश को समझ लेना जरूरी है।

दूसरी बात— यह सगठन क्या चाहेगा ? क्या करना चाहता है ? क्या इसकी प्रवृत्ति होगी ? समाज की जो जरूरतें हैं, उनको ध्यान में लेंगे तो उनकी प्रवृत्ति ध्यान में आ सकती।

समाज की पूरी जीवन – व्यवस्था ही रुग्ण है। उसमें आमूल क्रान्ति की जरूरत है। उसमें बुनियाद से ही पथ्थर बदल देने की जरूरत है। जैसे ही आज तक आदमी को हम टालते रहे हैं वह ढाँचा ही गलत सिद्ध हुआ है। उस ढाँचे से अनिवार्य रूपेण बीमारियाँ पैदा हुई हैं। फिर हम एक एक आदमी को जिम्मेदार ठहराते हैं कि तुम जिम्मेदार हो। जो कि वह आदमी victim होता है, शिकार होता है, जिम्मेदार नहीं होता, और उस पर हम जिम्मेदारी थोपते रहे हैं।

पिछले पाँच हजार वर्षों से यह बिलकुल ही आदमी के साथ अन्याय हुआ है। **आदमी गरीब होगा उसका चोर हो जाना**

बहुत संभव है। आदमी दीन - हीन होगा, उसका पापी हो जाना बहुत संभव है। जब तक दुनिया में दरिद्रता है, दीनहीनता है, तब तक हम सच्चे अर्थों में आदमी को नैतिक बनाने में समर्थ नहीं हो सकते। इतनी दरिद्रता होगी कि प्राण ही दरिद्रता को डूबा रहे हो तो नीति का स्मरण रखना बहुत मुश्किल है। एक तरफ समाज का सारा धन इकट्ठा हो जाय, और समाज के अधिक लोग निर्धन हों, और फिर हम उनको समझायें कि तुम धन का लोभ मत करना। तुम किसी दूसरे के धन को प्रतिस्पर्धा से मत देखना।

हम कुछ ऐसी बातें सिखा रहे हैं कि एक घर के एक कोने में सुस्वादु भोजन का ढेर लगा हो और भूखे लोग चारों तरफ इकट्ठे हुये है, उनकी नाकों में उस भोजन की सुगन्ध जा रही है, उनकी आँखें उस भोजन को देख रही हैं और वे भूखे हैं, और उनके पूरे प्राण रोटी माँग रहे हैं, और हम उन्हें समझा रहे हैं कि देखो भूलकर भी कभी भोजन का ख्याल भी मत करना। भोजन का विचार मत करना। दूसरे के भोजन की तरफ देखना भी मत ! यह बड़ा पाप है !

समाज की पूरी की पूरी व्यवस्था ऐसी है कि उससे अनीति पैदा होगी। अगर समाज के व्यापक पैमाने पर एक नैतिक जीवन विकसित करना हो, धार्मिक मैं नहीं कह रहा हूँ, नैतिक जीवन विकसित करना हो तो हमें समाज की 'आमूल धारणा को सोचना-विचारना पड़ेगा। हमें सोचना पड़ेगा सब तरफ।

तो जीवन जागृति केन्द्र समाज की आर्थिक व्यवस्था पर भी स्पष्ट दृष्टिकोण लेना चाहेगा और उस दृष्टिकोण को गाँव गाँव तक, कोने कोने तक पहुँचाना चाहेगा। समाज की सारी शिक्षा दूषित है, शिक्षा के नाम पर सिर्फ धोखा होता है। न तो मनुष्य का व्यक्तित्व निर्मित होता न उसकी आत्मा विकसित होगी, न उसके प्राणों में ऐसा फलित होता है

कि हम जीवन का अर्थ, जीवन की कला कुछ कह सकें। आदमियों बिना कुछ जाने डिग्रियाँ लेकर वापस चला आता है, बिना कुछ हुए घर वापिस लौट आता है और जिन्दगी का बहुमूल्य समय शिक्षा के नाम पर नष्ट हो जाता है। जिस समय में कुछ हो सकता था, वह बिल्कुल ही नष्ट हो जाता है।

जीवन जागृति केन्द्र को नई शिक्षा के संबंध में स्पष्ट दृष्टि विकसित करनी होगी कि नयी शिक्षा कसी हो।

हमारा परिवार बिल्कुल सड़ गया है। लेकिन हम उसमें इतने दिन से रहे हैं कि हमें पता भी नहीं रहा है कि उसकी सब चीजें सड़ गयी हैं। कोई दम्पती सुखी नहीं है। कोई पिता सुखी नहीं है बेटे से। कोई बेटा सुखी नहीं है बाप से। कोई माँ अपने बच्चों से सुखी नहीं है। कोई गुरु खुश नहीं है अपने शिष्यों से। कोई शिष्य खुश नहीं है अपने गुरु से। सारा का सारा समाज कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि एक दूसरे को दुःख देने के लिये हीं निर्मित हुआ हैं। परिवार की आमूल धारणा बदलनी जरूरी है।

नये तरह का परिवार बिकसित होना चाहिये। जहाँ पिता और बेटा, माँ और बेटे पति और पत्नी संतुष्ट जीवन में अधिकतम संतोष उपलब्ध कर सकें और ऐसा समाज निर्मित हो सकता है, सिर्फ हमें उस संबंध में सोचा नहीं, विचारा नहीं। उदाहरण के लिये मैंने कहा कि जीवन की सारी व्यवस्था पर जीवन जागृति केन्द्र एक आन्दोलन फैलाना चाहेगा। मेरी उस सब संबन्ध में दृष्टि है। धर्म के संबन्ध में मेरी दृष्टि है, लेकिन इससे यह अर्थ नहीं है कि जीवन के और पहलुओं पर मैं नहीं सोचता। मेरी तो अपनी समझ यह है कि जिस व्यक्ति के जीवन में धर्म का थोड़

सा भी प्रकाश होगा वह उस प्रकाश के सहारे जीवन के सारे पहलुओं को देखने में समर्थ हो जाता है ।

धर्म का दिया हाथ में हो तो हम जीवन की सारी समस्याओं को देखने में समर्थ हो जाते हैं। जीवन के प्रत्येक पहलू पर मेरी दृष्टि है वह मैं आप से कहना चाहता हूँ। पूरे समाज से कह देना चाहता हूँ ।

जीवन जागृति केन्द्र उन सारी बातों को पहुँचाने का ध्यान देगा। जीवन का ऐसा कोई पहलु नहीं है, जिसमें बदलाहट की जरूरत न आ गयी हो। सच तो यह है कि वह सिर्फ ऐतिहासिक जरूरतों से पैदा हो गया हैं हमारा जीवन। सक्रिय और सचेतन रूप से मनुष्य का समाज निर्मित नहीं हुआ है। अब तक जो समाज निर्मित हुआ है वह बिल्कुल अचेतन इतिहास की प्रक्रिया से निर्मित हो गया है । सचेतन रूप से विचार करके समाज की कोई भी चीज निर्मित नहीं हुई। जरूरत है कि हम सचेत होकर निर्मित करने का विचार करें, और सब कुछ बदला जा सकता है ।

इझराईल में, उन्होंने पन्द्रह वर्षों से एक छोटा सा प्रयोग किया है। प्रयोग का नाम है "किबुत्स"। यह परिवार में एक अत्यन्त क्रान्तिकारी प्रयोग है। मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान के गाँव गाँव में यह प्रयोग हो। आनेवाले सौ दो वर्षों में जो बच्चों "किबुत्स" के प्रयोग से विकसित होंगे वे बिल्कुल नये तरह के बच्चे होंगे ।

"किबुत्स" एक व्यवस्था है, जहाँ तीन महीने के बाद बच्चे को गांव के सामूहिक आश्रम में प्रवेश दे दिया जाता है। तीन महीने के बच्चे को फिर माँ बाप से दूर ही पाला जाता है। माँ बाप मिल सकते है महीने में पन्द्रह दिनों में, सप्ताह में, रोज। जब उन्हे सुविधा हो जा के बच्चे को प्यार कर सकते।

लेकिन बच्चे का सारा पालन पोषण सामूहिक कर दिया गया है। सामूहिक पालन पोषण के अद्भुत परिणाम हुये हैं। सामान्यतः सोचा गया था कि बच्चों का प्रेम इस भाँति माँ बाप के प्रति कम हो जायगा, लेकिन परिणाम यह हुआ है कि किबुत्स के बच्चे अपने माँ बाप से जितना प्रेम करते हैं, दुनिया का कोई बच्चा कभी नहीं कर सकता। उसका कारण यह है कि उन बच्चों को माँ बाप का प्रेम ही देखने का मौका मिलता है। दूसरा कुछ भी देखने का मौका नहीं मिलता। माँ बाप जब भी जाते हैं बच्चों के पास, उन्हें हृदय से लगाते हैं, प्रेम करते हैं और जब वे बच्चे घंटे दो घंटे को घर आते हैं तो मां बाप से प्रेम करते हैं। न माँ बाप को उनपर नाराज होने का मौका मिलता, क्रोध करने का, न गाली देनेका। न उन बच्चों को मौका मिलता है कि बाप मेरी माँ के साथ कैसा व्यवहार करता है। मां मेरे बाप से किस तरह बचन बोलती है, इन सबका उन्हें कुछ भी पता नहीं। माँ बाप उन्हें एकदम देवता मालूम होते हैं, क्यों कि जब भी वे आते हैं, तब वे देवता पाते हैं। वे घड़ी आधी घड़ी को आते हैं, माँ बाप भी घड़ी, आधी घड़ी को अपने बच्चोको मिलने जाते हैं।

बीस वर्षकी उम्र के बाद जब भी वे वापिस लौटेंगे पूर्ण शिक्षा लेकर, तो मां बाप के संबंध में उनके मनमें, कोई भी घृणा, कोई भी रोष, कोई भी प्रतिक्रिया, कोई भी Rebellion का भाव नहीं हो सकता है। उनका जितना प्रेम पाया गया, अब तक सोचा जाता थ कि माँ बाप से दूर रखने में बच्चों में प्रेम कम हो जायगा, लेकिन किबुत्स के प्रयोग ने सिद्ध कर दिया है कि मां बाप और बच्चों के बीच प्रेम अदभुत रूपसे विकसित हुआ। वहां जो बच्चे सामूहिक रहे, इसका हमें ख्याल ही नहीं है कि **छोटे बच्चे को बूढ़ों के साथ पालना एकदम अनैतिक है।** छोटे बच्चों की बुद्धि छोटे लड़के बच्चों की है। बूढ़ों की बुद्धि बूढ की है। बूढ़ों का

जीवन भर का अनुभव है, वे और ढंग से सोचते, लड़के और ढंग से सोचते हैं, और हमारे सभी लड़कों को बूढ़ों के साथ पलना पड़ता है। इसमें कितना अनाचार हो जाता है बच्चों के साथ, इसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है। न बूढ़े बच्चों को समझ सकते हैं, न बच्चे बूढ़ों को समझ सकते हैं। बूढ़े दुःखी होते हैं कि बच्चे हमें परेशान कर रहे हैं और हम बच्चों को कितना परेशान करते हैं, इसका हमें कोई हिसाब नहीं।

किबुत्सने कहा कि बूढ़े और बच्चों को साथ पालना, बच्चों को बचपन से ही पागल बनाने की चेष्टा है। क्यों कि बूढ़े का अपना सोचने का ढंग है। गलत है या नहीं, उसका अपना जीवन का अनुभव है, उसकी उम्र का देखने का अपना रास्ता है। छोटे बच्चे की जिन्दगी से उसका अपना क्या संबन्ध ? तो किबुत्स कहता है कि एक उम्र के लोगों को एक ही उम्र के लोगों के साथ पालना मनोवैज्ञानिक है। तो जिस उम्र के बच्चे हैं, उसी उम्र के बच्चों के साथ पाले जायँ और, इसका परिणाम यह हुआ कि किबुत्स से आये हुये बच्चों में एक ताजगी, एक नयापन, बात ही और, खुशी ही और। हमारे बच्चे तो बूढ़ों के साथ रह कर उदास हो जाते हैं, उसके पहले कि वे खुश होना सीखें। चारों तरफ उदासी उनको पकड़ लेती है। वे एकदम भयभीत हो जाते हैं, क्योंकि हर चीज में उन्हें लगता है कि वे गलत हैं। पिता किताब पढ़ रहे हैं, गीता पढ़ रहे हैं और उन्हें लगता है कि बच्चे शोरगुल कर रहे हैं। बच्चों का शोरगुल उनको गलत लग रहा है। किन्तु बच्चों को कभी ख्याल में भी नहीं आता कि गीता पढ़ना क्या इतना उपयोगी हो सकता है कि उनका शोर करना फिज़ूल हो ?

बच्चों के लिए कूदना और शोर करना इतना सार्थक है कि

उनकी कल्पना के बाहर है कि आप एक किताब लेकर बैठे तो आप बहुत बड़ा काम कर रहे हैं कि हम शोर न करें। हर चीज में, धीरे धीरे उन्हें पता चल जाता है कि वे गलत हैं। तो हम हर बच्चे को Guilty or अपराधी बना देते हैं बचपन से। उसे लगने लगता है कि जो मैं करता हूँ वह गलत है। शोर करता हूँ गलत है। खेलता हूँ गलत है। दौड़ता हूँ गलत है। पेड़ पर चढ़ता हूँ, गलत है। नदी में कूदता हूं गलत है। कपड़े पहनता हूं, गलत है। रास्ते में खड़ा होता हूँ गलत है। मैं जो भी करता हूँ, गलत है। इसका इकट्ठा परिणाम होता है कि मैं गलत आदमी हूँ।

हम अपराधी पैदा कर रहे हैं बचपन से। और उनका कुल कारण यह है कि बच्चों को उनकी भिन्न उम्र के लोगों के साथ पाला जाता है। किबुत्स में उसने व्यवस्था की कि बच्चे एक ही उम्र के लोगों के साथ पलें। उनको सम्हालने के लिये भी उनसे थोड़ी ही ज्यादा उम्र के बच्चे हों, बहुत बड़ी उम्र के लोग नहीं। बड़ी उम्र के लोग कोने में और दूर खड़े रहे, और वे इतना ही ध्यान रखें कि बच्चे अपने को आतम हानि न पहुँचायें। बस इससे ज्यादा ध्यान रखनेकी कोई जरूरत नहीं।

मेरे एक मित्र किबुत्स के एक स्कूलमें गये और वे देख के दंग रह गये। बच्चोंका खाना हो रहा था, और उन्होंने कहा कि मैंने जिन्दगी में पहले दफे अनुभव किया कि खाना बच्चों का कैसे होना चाहिये। पचास साठ बच्चे थे। कुछ बच्चे मेज पर नाच रहे हैं जिस पर खाना चल रहा है। कुछ बच्चें तम्बूरा बजा रहे हैं। ऐक बच्चा Twist करके (Dance) डान्स कर रहा है। एक लड़की गीत गा रही है। सारा खेल चल रहा है, बीचमें खाना भी चल रहा है। नाच भी चल रहा है। उन्होंने कहा कि वह दो ढाई घंटे तक

चलता रहा खाना और नाच। मैंने पूछा कि यह रोज होता है? उन्होंने कहा खाना बिना गाये कैसे हो सकता। और उन्होंने कहा कि मैं दो घंटे देख के दंग रह गया वे बच्चे इतने खुश थे। लेकिन ये बूढ़ों के साथ खाने में यह नहीं हो सकता। यह असंभव है।

हमारे बच्चे खुशी को जानने के पहले, उनकी खुशी नष्ट हो जाती है। उनको बच्चे की तरह पाला नहीं गया। मेरी दृष्टि है बच्चे से लेकर बूढ़े तक, आर्थिक व्यवस्था से लेकर राजनीति तक, शिक्षा समाज, परिवार इस सारे को कैसे रूपांतरित किया जाय। और उसके लिये एक संगठन की जरूरत है, वह धार्मिक संगठन नहीं। इस पर तो विस्तार से मैं बात कर सकूँगा। इस पर तो एक अलग केम्प लेने का विचार चलता है, जहाँ मैं समाज के सारे अंगों को कैसे बदला जाय उसकी अलग मैं पूरी बात कर सकता हूँ।

दूसरी बात – कुछ बातें हमें मान के चलनी चाहिये जैसे, जिस समाज में हम हैं वह रुग्ण है। इस लिये हम अगर किसी संगठन में यह शर्त बना लें कि स्वस्थ लोग ही इस संगठन के सदस्य बन सकेंगे वह संगठन कभी बनेगा ही नहीं। यह वैसे ही जैसे कोई अस्पताल यह तख्ती लगा दे दरवाजे पर कि सिर्फ वे ही लोग अस्पताल में भर्ती हो सकते हैं जो स्वस्थ हों। तो उस अस्पताल में कोई भर्ती नहीं होगा क्योंकि पहले तो बात यह है कि अस्पताल की जरूरत ही नहीं रह जाती। दूसरी बात यह है कि अस्पताल में आदमी तभी जाता है जब वह बीमार हो।

अगर हम इस तरह की Conditions और शर्तें बनाएं कि निरहंकारी लोग ही संगठन में आयें और जिन्हें मान, पद प्रतिष्ठा का कोई सवाल नहीं वे ही संगठन में आयें, जिन्हें धन और निर्धन

के बीच कोई फर्क नहीं वे ही संगठन में आयें तो आप गलत शर्तें लगाते हैं।

मैं यह मानता हूँ कि लोग संगठन में रह जाने के बाद इस भाँति के हो जाने चाहिये, लेकिन यह संगठन में आने की शर्त नहीं हो सकती। जो आदमी इस संगठन में रह जाय, वह ऐसा हो जाना चाहिये लेकिन ऐसा हो तब हम संगठन खड़ा करेंगे या संगठन बनायेंगे तो हम पागल हैं। फिर संगठन बनाने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। यह हमें मान के चलना पड़ेगा कि संगठन खड़ा होगा तो आदमी की बीमारियों के साथ शुरू होगा। इस बात को स्वीकार कर के चलना पड़ेगा आदमी में बीमारियाँ हैं। अब उन बीमारियों को कितना बचाया जा सकता है। इस पर ध्यान रखना जरूरी है। कितना दूर किया जा सकता है उसका उपाय करना जरूरी है। अन्तिम लक्ष्य ध्यान में होना चाहिये कि वह दूर हो जाय।

कैसे दूर होगा? **सामान्य मनुष्य की सारी क्रियाएं अहंकार से प्रेरित होती हैं।** यह तो परम धर्म की उपलब्धि पर होता है कि अहंकार खो जाता है। तब सारी क्रियाएँ निरहंकार हो जाती हैं। लेकिन उसके पहले यह नहीं होता। तब क्या रास्ता है? लेकिन अहंकारग्रस्त मनुष्य भी अच्छा काम कर सकता है, और अहंकार ग्रस्त मनुष्य बुरा काम भी कर सकता है। अच्छे काम के साथ उसके अहंकार को जोड़ा जा सकता है और बुरे काम के साथ भी जोड़ा जा सकता है। निश्चित ही परम अर्थों में अच्छा काम तभी होता है जब अहंकार शून्य हो जाता है। लेकिन वह पहली शर्त नहीं हो सकती। जब भी कोई सामाजिक जीवन संगठना खड़ी करनी हो तो यह मान के चलना पड़ता है कि आदमी के रोग को हम स्वीकार करते हैं। उस रोग का अधिकतम शुभ के लिये हम प्रयोग करने की कोशिश करेंगे।

अब जैसे यही सवाल है— कुछ लोग ५० रु० में ठहरे हुए हैं, कुछ लोग तीस रुपये में ठहरे हुये हैं। इसमें कई कारण हो सकते हैं और जैसा समाज है वर्ग विभाजित, उसमें यह असंभव है कि इस पूरे वर्ग विभाजित समाज में आप एक छोटा सा over seas बनाना चाहें, जहाँ वर्ग विभाजन न हो, क्योंकि यहाँ जो लोग आयेंगे, उस वर्ग विभाजत समाज से आयेंगे। उनके सारे जीवन का सोचने का ढाँचा वर्ग विभाजन का है। इस ढांचे से वे लोग यहाँ आयेंगे तीन दिन के लिये। अगर हम यह शर्त रख लें कि यहां वर्ग विभाजित भाव छोड़ देना पड़ेगा, तो ही प्रवेश पा सकते हैं, तो प्रवेश ही पाया नहीं जा सकता। वर्ग विभाजित समाज है। समाज Classes में बँटा हुआ है। वे जो आदमी यहाँ आ रहे हैं, वे इस समाज से आ रहे हैं। उनके प्राणों में घेरे यह वर्ग बैठ गये हैं। उस वर्ग को निकालना है। वर्ग को निकालने की चेष्टा करनी है। लेकिन वर्ग न हो यह योग्यता नहीं बनाई जा सकती कि 'पहली Qualification" तब प्रवेश मिलेगा।

पचास रुपये वाला आदमी है। यह पचास रुपये वाला आदमी रुपये की सुविधा मांगता है। उसकी अपनी आदतें हैं। पचास रुपये की सुविधा अगर उसे न दी जाय तो वह नहीं आयेगा। मुझे पता चला कि बम्बई से और दो-चार सौ लोग आनेको थे। लेकिन पचास रुपये वाला हिस्सा खतम हो गया। वे नहीं आ सके। अब जो ये आदमी हैं, वे जो पचास रुपये में ठहरते हैं। मैं नहीं कहता कि विभाजन खत्म कर दिया जाय। मैं तो यह कहता हूँ कि विभाजन और थोड़ा बढ़ा दिया जाय, सौ रुपये का भी वर्ग हो, अस्सी का भी हो, सत्तर का भी हो, दस का भी हो, पांच का भी हो, और शून्य का भी हो। वे जो, जैसे एक मित्रने कहा कुछ लोग हैं जो, कुछ भी नहीं दे सकते। जो कुछ भी नहीं दे

सकते, उनको लाने का एक ही उपाय है कि जिनको १५० रुपये देने में मजा हो सकती उनके लिये १५० रुपये का वर्ग भी हो।

इसके अलावा कोई रास्ता नहीं। तो शून्य वाला भी लाया जा सकता है। किसी को तो सिर्फ १५० रु. देने में ही सुख उपलब्ध होता है कि वे १५० रुपये वाले वर्ग में ठहरे हैं, उनको इतना सुख लेने दिया जाय। यह तो पीछे की बात होगी कि हमारी यहां की व्यवस्था और विचार और चिन्तन से उनको पता चले कि वे भूल में हैं। उन्होंने भूल की। जो यहां यह केन्द्र का व्यवहार होगा। शून्य रुपये देनेवाले से वह वही होगा, जो १५० रुपये देनेवाले से होगा। व्यवहार मैं कह रहा हूँ गादी और तकिये आदि की सुविधा के लिये नहीं कह रहा हूं। क्यों कि ठीक हैं कि १५० रुपये वाले को आपको दो अच्छे तकीये देने पड़ेंगे। वे देने चाहिए। लेकिन व्यवहार – जो केन्द्र के कार्यकर्ता हैं वे अगर १५० रुपए वाले से ज्यादा सम्मान से बोलेंगे तो गलती होगी। तो भूल होगी। जिसने एक भी पैसा नहीं दिया है उससे वे अगर असम्मान से बोलते हैं तो भूल होगी। तो हम वर्ग पैदा कर रहे हैं। फिर ये तो वर्ग हैं १०० रुपये वाले १५० रुपये वाले उसी वर्ग से तो यह समाज आ रहा है।

हम ऐसे वर्गों को मिटाने के लिए नया समाज खड़ा करना चाहते हैं। यहाँ जो व्यवहार होगा, उस तल पर रत्ती भर का फासला नहीं होना चाहिये। लेकिन यह फैसला होगा १५० रुपये वाले मेरे बंगले के पास ठहरे। यह व्यवहार का फासला नहीं है। वे १५० रुपये भी दें और गांव में भी ठहरे, और जो कुछ भी न दे वह मेरे पास ठहरे तो यह किस अर्थ में न्यायपूर्ण है? उसे ठहरने दें यहाँ। उसके यहाँ ठहरने से कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि जब वे मुझसे मिलने आयेंगे तो उसे पता

चलेगा कि मुझ से मिलने जो सौ कदम चलके आया है, उसमें और जो दो कदम चलके आया है, मुझसे मिलने वाले में कोई फर्क नहीं।

और फिर हमें नई धारणा विकसित करनी चाहिये कि १५० रुपये वाले में वे लोग ठहरे हुए हैं जो उतने स्वस्थ नहीं हैं जो १० रुपये वाली जगह में ठहर सकें। वह हमें विकसित करनी चाहिये धारणा, वह जो ५० रुपये वाले में ठहरा हुआ है वह अस्वस्थ आदमी है। ३० रुपये वाला ज्यादा स्वस्थ है। वह ३० रुपये में भी गुजारा करता है। हमें धारणा Values बदलनी है। १५०-१०० रुपये से आप नहीं छुटकारा पा सकते। हमें यह धारणा बदलनी चाहिये कि ३० रुपये वाले में जो ठहरा है वह ज्यादा स्वस्थ आदमी है। ५० रुपये में जो ठहरा है वह बीमार है, १५० रुपये वाला और भी बीमार है।

उसके लिये ज्यादा सुविधा और आयोजन की जरूरत है और बीमार आदमी के प्रति हमारी दया होनी चाहिये घृणा नहीं। स्वभावतः बीमार आदमी के प्रति दया ही होती है। घृणा का क्या कारण? हमें धारणा बदलनी चाहिये। हमारे सोचने or values का फर्क होना चाहिये।

इसलिये मुझे ख्याल आता है कि केन्द्र के मित्रोंने जो वर्ग के नाम रखे हैं, वह "A" class ३० रूपये वालों के लिये शायद रखा है। "C" class. ५० रुपये वालों का। तो Third class ५० रूपये वाला है, तो वे First class में हैं नहीं। होना भी यह चाहिये कि हम दृष्टिकोण बदलें कि ५० रूपये वाले को भी ख्याल हो कि ५० रूपये वाले में ठहरना थोड़ा दया का पात्र बनना है। ३० रूपये वाले class में ठहरने वाले को लगता है कि वे जरा ज्यादा स्वस्थ आदमी हैं।

सौ आदमी के साथ जो ठहर सकता है, वह आदमी ज्यादा सामाजिक है। जो कहता है कि मैं अकेला ठहरूँगा दूसरे के साथ सो भी नहीं सकता, यह आदमी रुग्ण है। इसकी व्यवस्था हमें करनी चाहिए, और हम उपाय करेंगे धीरे-धीरे कि वह भी सौ के साथ ठहर सके। लेकिन हम यह शर्त लगा दें कि नहीं, यहां तो एक ही वर्ग होगा, तो हम सिर्फ इसको रुकावट डाल रहे, और बड़े मजे की बात यह है जिसको हम रुकावट डाल रहे हैं वे उनके लिए भी सहारा बनता है जो कि नहीं आ रहा है।

आपको शायद अंदाज नहीं, जिन लोगों ने तीस रुपये की व्यवस्था की है, तीस रुपये में उनका खर्च हो नहीं रहा। उनका खर्च करीब पैंतीस रुपया पड़ेगा, यह पांच रुपया, पचास रुपये वाला चुका रहा है। पचास रुपये का कुल खर्च नहीं है। खर्च कोई चालीस रुपये के करीब है। वे दस रुपये ज्यादा पड़ेंगे पचास रुपये चुकाने वाले पर। वे चालीस रुपये वालों को तीस रुपये किये जा सकें इसलिए हैं। लेकिन आदमी की बुद्धि बड़ी अजीब है, उसके लिए इन्तजाम किया जाय तो वह परेशान होता है कि मुझे तीस रुपये का ही हिस्सा बना दिया। न इन्तजाम किया जाय तो चालीस रुपये देने की उसकी तैयारी नहीं। और जो आदमी उसके लिए दस चुका रहा है वह आदमी घृणा का पात्र हो रहा है। फिर वह समाज इसका जुम्मा न तो जीवन जागृति केन्द्र पर है न मुझपर। यह आप के सारे बाप दादाओं पर है। पांच हजार साल में उन्होंने जो पैदा किया है, वे सब बेवकूफी से भरा हुआ है।

अ ज तो उसको स्वीकार करके चलना पड़ेगा, उसकी बदलाहट करनी होगी तो भी। फिर यहाँ केन्द्र के मित्रों को

व्यवहार में जरूर बहुत ध्यान रखने की जरूरत है । उस तलपर हमारे मन में धन की कोई स्वीकृति नहीं होनी चाहिए। जरा भी नहीं होनी चाहिए । इसका मतलब यह नहीं कि धन का अपमान होना चाहिए । क्योंकि हमारी बुद्धि इसी तरह काम करती है । या तो हम धन को आदर देते हैं या तो अपमान करते हैं, बस दो के बीच हम डोलते हैं, तो धन की सहज स्वीकृति होनी चाहिये। धन का मूल्य है। धनकी शक्ति है और गलत हैं वे लोग, जो समझते हैं कि धन का कोई मूल्य नहीं। और कोई शक्ति नहीं। धन का बहुत मूल्य है और बहुत शक्ति है।

लेकिन उसके कारण कोई मनुष्य सम्मानित नहीं होता है। मनुष्यता धन से बहुत बड़ी बात है। खाट धन से मिलती है, और तकिये भी धन से मिलते हैं, और मकान भी धन से मिलते हैं और भोजन भी। लेकिन मनुष्यता धन से नहीं मिलती। तो खाट तकिये में तो फर्क होगा लेकिन मनुष्यता के आदर में फर्क नहीं होना चाहिये।

धीरे धीरे केन्द्र के मित्र यह हवा पैदा कर लेंगे की मनुष्यता में कोई फर्क नहीं तो हम वह वक्त भी ले आयेंगे कि हम कहेंगे कि जो जितना दे सके, वे उतना दें, तीस और सौ के बीच जो जितना दे सके उतना दे। या दस और सौ के बीच जो जितना दे सके उतना दे। तो जो जितना दे सके उतना दे और जो जितनी सुविधा में रहना चाहें, उतनी सुविधा लिख के दे दें। यह धीरे से विकास की बात है कि आज से पांच सालके बाद हम वह कर सकेंगे कि दस रुपये से लेकर सौ रुपये तक जिसको जितना देना हो उतना दे दें और उसकी जितनी जरूरत है उतनी मांग कर लें। हो सकता

है दस रुपये देने वाला बीमार हो और उसे सौ रुपये की व्यवस्था की जरूरत हो और वह सौ रुपये न दे सकता हो और यह भी हो सकता है कि सौ रुपये देनेवाला सौ रुपये दे सकता है, और बीमार न हो और दस रुपये की व्यवस्था में रह सकता हो।

वह प्रेमपूर्ण हवा हम पैदा कर सकते हैं, लेकिन उनको बुनियादी शर्त नहीं बनाई जा सकती। उसको पहली योग्यता नहीं बनाई जा सकती, वह हमारी, हवा और निर्माण की बात है ।

इसी भाँति जीवन जागृति केन्द्र के मित्र और कार्यकर्ता एकदम से प्रतियोगिता से मुक्त नहीं हो जायेंगे। लेकिन प्रतियोगिता से मुक्त हो सकते हैं। यह लक्ष रखा जा सकता है। लेकिन इसे भी सीधा लक्ष बनाने की जरूरत नहीं। मेरी दृष्टि में नकारात्मक लक्ष कभी भी नहीं बनाना चाहिए। ध्यान होना चाहियें कि हमारा प्रेम विकसित हो। जितना प्रेम विकसित होगा प्रतियोगिता उतनी ही कम होती जायगी।

शायद आपको यह पता भी न हो कि जो आदमी प्रतियोगिता की माँग करता है, वह क्यों माँग करता है? वह आपको पता है? एक आदमी कहता है मुझे पहला स्थान चाहिये। मैं दूसरे स्थान पर खड़ा होने को राजी नहीं। लेकिन क्या आप ने कभी सोचा कि कोई आदमी पहले स्थान पर खड़ा क्यों होना चाहता है? शायद आपने ख्याल भी न किया होगा, जिस आदमी को जीवन में प्रेम नहीं मिलता, वही आदमी प्रथम होने की दौड़ में पड़ता है। क्योंकि प्रेम में तो प्रत्येक व्यक्ति तत्क्षण प्रथम हो जाता है। अगर आपने मुझे प्रेम दिया, तो उस प्रेम के द्वारा जिसको मैं प्रेम दूँगा वह प्रथम हो गया अगर आपने मुझे प्रेम

दिया तो मैं प्रथम हो गया । इस जगत में मैं द्वितीय नहीं रहा। जिस आदमी को प्रेम नहीं मिलता जीवन में, और न जो प्रेम को दे पाता है और न ले पाता है, वह आदमी प्रेम की कमी प्रतियोगिता से पूरी करता है ।

[Competition जो है, वह "Substitute' पूरक है । प्रतियोगिता है, वह पूरक है। जिसको प्रेम नहीं मिला, वह प्रतियोगी बन जाता है । फिर वह कहता है मुझे किसी तरह प्रथम होना है । अगर मै एक लड़की को प्रेम दूँ, तो अनजाने वह लड़की यह अनुभव करेगी कि उससे ज्यादा सुन्दर, इस पृथ्वी पर कोई स्त्री नहीं, बस मेरा प्रेम उसको यह ख्याल दिला देगा कि उससे सुन्दर श्रेष्ठ कोई स्त्री नहीं । अगर मुझे कोई प्रेम करे तो मुझे यह पैदा हो जायगा उसके प्रेम के कारण, उसकी आँखों के कारण। उसके हाथ के स्पर्श से कि मेरे जैसा पुरुष इस जगत में कोई भी नहीं ।]

प्रेम प्रत्येक व्यक्तिको प्रथम बना देता है। जिसपर प्रेम की नजर गिरती है, वह प्रथम हो जाता है, जिसके जीवन में प्रेम नहीं हो पाता, वे बिचारे प्रथम होने की कोशिश करते हैं। इसलिये प्रतियोगिता प्रश्न नहीं है। प्रश्न हमेशा प्रेम है। जिस आदमी के जीवन में प्रेम फलित होता है, उसे यह ख्याल (ही भूल जाता है कि) ही नहीं आता कि वह प्रथम आये । प्रथम आने का सवाल ही समाप्त हो जाता है ।

प्रेम प्रथम बना देता है प्रत्येक को। यह सवाल नहीं है कि प्रतियोगिता छोड़े। वह मेरी दृष्टि नहीं। मेरी दृष्टि यह है

कि केन्द्र के मित्र कितने प्रेमपूर्ण हो सके। उस दिशा में प्रयास करना है । वे जितने प्रेमपूर्ण होते चले जायेंगे, इतनी प्रतियोगिता कम होती चली जायगी ।

प्रतियोगिता केवल बीमारी है, प्रेम के अभाव से पैदा हुई। इसलिये प्रतियोगिता मिटानी है, यह बात ही गलत है। प्रतियोगिता कभी नहीं मिटती. जबतक प्रेम नहीं बढ़ता, इस दुनिया में इतनी प्रतियोगीता हैं क्योंकि प्रेम बिल्कुल नहीं और यह प्रतियोगिता रहेगी । एक कोने से मिटाइयेगा दूसरे कोने से शुरु हो जायगी । इधर से दबाइयेगा, वहाँ से निकलने लगेगी, क्योंकि बुनियादी सवाल प्रतियोगीता नहीं है। प्रेम कैसे विकसीत हो उस पर जोर देना है। और इस पूरी संगठना को प्रेम पर ही खड़ा करना है । प्रेम के सूत्र हैं उसकी मै आप से धीरे धीरे बात करूंगा । अनेक बार मैंने कहा है कि प्रेम कैसे विकसीत हो । इसी में छोटी मोटी बातें जो सुबह हुई है वो भी में आप से कहूँ ।

ऐसा रोज होता है मेरे आसपास कार्यकर्त्ताओं का एक वर्ग इकट्ठा होगा ही । जरूरी भी है कि वे इकट्ठा हो न इकट्ठा हो तो मेरा जीना ही मुश्किल हो जायगा । सुबह से उठता हूँ । उठा और रात सोया तबतक एक क्षणका भी विश्राम मुझे नहीं । नहीं हो सकता । मैं भी जानता हूं कि विश्राम लेने जैसा समय भी नहीं । इतनी परेशानी में आदमी है कि विश्राम क्या लेना ? लेकिन अगर काम भी करना हो तो विश्राम जरूरी है और किसी क्षणो में नहीं। जो मित्र मुझे मिलने आते हैं उनको तो पता भी नहीं होता। अभी बनारस से बोलके मैं लौटा । रात को कोई दस बजे

है और घर पर आठ दस आदमी इकट्ठे है सुबह से मैं बोल रहा हूं । रात दश बजे मैं लौटा हूं कि अब सो जाऊंगा, कमरे पर आठ दस लोग इकट्ठे हैं उनको पता भी नहीं । उनका कोई कसूर भी नहीं, लेकिन उन्हें कुछ बातें पूछनी है । वे प्रेम से मिलने आये हैं । अपनी बातें उन्होंने शुरू कर दी । साढ़े बारह बजे तक बात किये चले जाते हैं । अब घर के जो Host यजमान हैं, परेशान हैं । वे घूम रहे हैं । बार-बार इशारा करते हैं कि उनको मैं उठाऊं । लेकिन वे तो बातचीत में इतने तल्लीन हैं और उनकी बातचीत उपयोगी है । अर्थपूर्ण है कि उनके जीवन की समस्या है । कहाँ वे ख्याल रखें कि अब मुझे सो जाना चाहिये । एक बजे जाके उनको कहना पड़ा । कहा तो वे दुःखी हुए । और कहा कि छ महीने से राह देख रहे हैं आपके आने की और कल सुबह तो आप चले जायेंगे । क्या यह नहीं हो सकता कि आप आज हमारे लिये न सोये । मैंनें कहा कि यह हो सकता । लेकिन यह कितने दिन चल सकेगा । यह हो सकता है कि आज मैं नहीं सोऊंगा लेकिन यह कितने दिन चल सकता है ।

अभी एक दिन एक मीटिंग थी आठ बजे : सात बजे मैं थका मांदा लौटा और सो गया था के । क्योंकि आठ बजे की मीटींग में जाना है । कुछ मित्र मिलने आये । वे मित्र यहाँ है । तो मेरे छोटे भाई ने उनको कह दिया कि वे नहीं मिल सकेंगे अब आप आठ बजे मीटींग में आ जाये । वे बिचारे महीनों से मेरे आने के ख्याल में होंगे ।

उसको बहुत दुःख हुआ । वे रोते हुए घर लौटे । मुझे कल ही पता चला । उनकी तरफ से कोई भी कसूर नहीं । उनको कुछ

भी पता नहीं । वे इतने प्रेम से छः महीने में साहस जूटाके मिलने आये । न मालूम कितना भाव ले के आये हो, न मालूम क्या कहने आये हों और किसी ने कह दिया "नहीं कि नहीं मिल सकते"। इसमें गलती किसकी है ? मैं मानता हूँ कार्यकर्ताओं की ही गलती है सदा । क्योंकि जो आया है, उसकी तो गलती नहीं. कार्यकर्ता की सदा गलती है । क्योंकि इसी बात को थोड़े अलग ढंग से कही जा सकती थी । यह बात थोड़ी प्रेमपूर्ण हो सकती थी इस कहने में कि अभी नहीं मिल सकते हैं आप मीटींग में आठ बजे पहुँच जाये । मेरा तो ध्यान रखा गया, लेकिन मिलने आया था उसका कुछ भी ध्यान नहीं रखा गया । यह भूल होगी । यह एकदम भूल होगी । मुझसे भी ज्यादा ध्यान उसका रखा जाना जरूरी हैं जो मुझसे मिलने आया है । क्योंकि न मालूम कितनी आकांक्षा, न मालूम कितने ख्याल में, न मालूम कितने विचार ले के आया था, इस बात को फिर ऐसा भी तो कहा जा सकता था कि मै दिन भरका थका हुआ आया हूँ ।

अभी लेट गया हूँ । अगर आप कहें तो उठाऊं । आप सोच लें । मैं नहीं सोचता की जो आदमी मुझ से नहीं मिलने के कारण रोता हुआ घर लौटा, वे मुझे उठाने के लिये राजी होता । यह नहीं हो सकता था । यह असंभव था । यह असंभव था अगर उसीको यह कहा होता कि वे सोए हुए हैं दिन भर के थके हुए आकर, और आठ बजे मीटींग में फिर जाना है । थोड़ी तकलीफ होगी आप कहें तो उठाऊं । तो मैं नहीं मानता हूँ कि वे मित्र जो रोते हुए थे, जो इतने भाव भरे हुए आये थे, वे इतनी भी कृपा मुझ पर न दिखाते ? वे रोते हुए नहीं लौटते तब वे खुश लौट सकते । लेकिन कार्यकर्ताओं की स्थिति भी धीरे धीरे एक रूटीन (Routine) सी हो जाती । उन्हें

समझाने बुझाने का ख्याल भी नहीं रह जाता । उन्हें भी तकलीफ एक ही हों तो समझाये । उन्हे दिन में कई लोगों को यही बात कहनी है । लेकिन कार्य करने का अर्थ ही यह है कि हम वृहतर समाज से संबंधीत हो रहे हैं । हम अनेक लोगो से संबन्धित हो रहे हैं । हम अनेक लोगों के प्रति प्रतिवार प्रेम पूर्ण हो सके तो ही हमारे कार्य करने की कुशलता, कला और सफलता है ।

जीवन जागृति केन्द्र के मित्रों को मेरा ध्यान तो रखना ही है । लेकिन मुझ से भी ज्यादा ध्यान उन मित्रों का रखना है, जो मुझ से मिलने आयेंगे । अगर कभी रोकने भी पड़े तो उन्हें रोकने में सदा उनपर ही छोड़ देना चाहिये और अगर वे छोड़ने को राजी न हों तो मेरी फिक्र छोड़ देनी चाहिए । मुझे थोड़ी तकलीफ होगी, उसकी चिन्ता छोड़ देनी चाहिये । **किसी आदमी को दुःखी करके लौटाना एकदम गलत है** । अगर उसे खुशी से लौटा सकते हो तो ठीक, नहीं तो मत लौटाइये । मेरी तकलीफ उतनी नहीं । उनकी खुशी ज्यादा किमती है । आखिर मैं जो भी श्रम कर रहा हूं, वह इसलिये कि कोई खुश हो सके । अगर उसकी खुशी ही खोती हो तो मेरे श्रम का कोई अर्थ नहीं रह जाता । एक भी आदमी असंतुष्ट लौटता है मेरे पास से तो उसका पाप मेरे उपर ही लगता है । यह मेरे मित्रों का ध्यान में ले लेना चाहिये । उनकी तकलीफ मैं समझता हूँ । उनकी अड़चन मैं समझता हूँ । हर आदमी आके प्रवेश करना चाहता है, वे कहां से इतना समय लाए । समय सीमित है । दो मिनिट में किसी को मिल के जाने में कष्ट होता है । लेकिन मेरी अपनी समझ यह है कि दो मिनिट में खुशी से मिल के जा सकता है । और उसकी पूरी की पूरी सायन्स व्यवहार की,

कार्यकर्त्ताओं को शीख लेनी जरूरी है । इधर मैं सोच रहा हूँ कि कार्यकर्त्ताओं का एक छोटा सा शीबीर तीन चार दिन के लिये ले लूँ । वहाँ, इस सम्बन्ध सारी बात कर सकुँ । एक छोटे से शब्द से सब कुछ फर्क पड़ रहा है । छोटे से व्यवहार से सब फर्क पड़ जाता है । एक हाथ के छोटे से स्पर्स से सबकुछ फर्क पड़ जाता है ।

मेरे एक मित्र, मेरे साथ थे किसी गांव में । उनको जाने पर कुछ मित्रों ने मुझे आके शिकायत की कि वे हमारे हाथ पकड़े हमें ऐसे ले जाते जैसे हमें निकाल रहे हों । हमें ऐसे ढ़ंग से ले जाते हैं जैसे निकाल रहे हो । और उस ढ़ंग से तो चोट पहोंच जायगी । दूसरे ढ़ंग से भी बोल सकते हैं । अभी दो लोग बम्बई से सिर्फ इसलिये आ गये, परसों जबलपुर पहुँचे, मुझसे मिलने सिर्फ शिकायत करने । पती और पत्नी बम्बई से जबलपुर इसलिये पहुँचे शिकायत करने कि हमें मिलने नहीं दिया गया बम्बई में और हमें धक्के देकर कहा कि जाव जाव, अभी नहीं मिल सकते, तो वे कहने लगे कि हमें भारी चोट पहुँची कि क्या हम मनुष्य नहीं है ? क्या कि हमें बिल्कुल पशु की तरह धक्का देते ?:कठिन है यह बात ?

मैं जानता हूँ कि कार्यकर्त्ताओं को कितनी तकलीफ है । वे दिन भर में घबरा जाते है सुबह से सांज तक । वे भूल जाते हैं । लेकिन उस भूल जाने में वे कार्यकर्त्ता नहीं रह जाते । उन्हें अत्यन्त विनम्र होना पड़ेगा । अत्यन्त प्रेमपूर्ण होना पड़ेगा, और एक बात ध्यान में लेना चाहिये कि दूसरे को दुःख देकर मेरा सुख बचाया जा सकता है तो उस सुख को नहीं बचाना है । उसकी फिक्र छोड़ दे । उसकी बिल्कुल ही फिक्र छोड़ दें । दूसरे को सुखी

रखकर अगर मेरी सुविधा जुटा जा सकती है तोही जुटानी है, अन्यथा नहीं जुटानी । इसको ध्यान में रख लेंगे तो फर्क पड़ेगा। ऐक भी व्यक्ति, और एक ऐक व्यक्ति की कितनी किमत है । हमें कुछ पता नहीं । एक एक आदमी अनुठा है । एक अदना अपरिचित आदमी आता है । वह क्या है ? क्या हो सकता है ? क्या कर सकता है ? कुछ भी पता नहीं । उसके मनको चोट देकर लौटा देना एक बहुत Potential Force-को लौटा देना है । वह गलत बात है । यह नहीं होना चाहिये ।

किन्तु कार्यकर्त्ता भी अभी विकसीत नहीं हुए । अभी तो कुछ मित्र आये हैं, वे अपना काम धाम छोड़कर मेरा काम कर देते हैं । वे तो तभी विकसीत होंगे जब कि व्यापक संगठन खड़ा होगा । और हम सारी चीजों पर, सारे मुसदो पर व्यवस्था कर सकेंगे । तो एक नये कार्यकर्त्ताओं का वर्ग निश्चित ही खड़ा होगा ।

तीन बातें अन्त में, एक तो मैं युथफोर्स का संगठन चाहता हूँ । एक युवक क्रान्ति दल चाहता हूँ पूरे मुल्क में । युक्रांद के नाम से एक संगठन चाहता हूँ युवकों का । जो एक सैनिक ढंग का हो । जो युवक रोज मिलते हो, युवक और युवतियाँ दोनों उसमें संमिलित हों, सकते हैं । और अभीं मेरी धारणा विकसीत चली जाती है कि बड़ों का, वृद्धो का जो ध्यान है वह विश्राम का होगा । युवकों का ध्यान तो सक्रिय होगा "More in Action" होगा । खेल ते हुए, परेड़ करते हुए ध्यान ! युवकों के संगठन गांव गांव में खडे करने हैं । जो खेलेंगे भी और खेल के साथ साथ ध्यान का प्रयोग करेंगे । जो क्वायत करेंगे, परड़े करेंगे, और

उसके साथ ध्यान का प्रयोग करेंगे । और यह युवकों की शक्ति के आधार पर, जीवन जिन जिन चीजों पर हमें बदलना है, उनकी हम हवा, खबर, गांव गांव तक वातावरण पैदा करेंगे । तो एक, युवकों का एक संगठन खड़ा करना है।

दूसरी बात, सैकड़ों सन्यासी, सन्यासीनियाँ, हिन्दु, जैन, मुसलमान मुझे निरन्तर मिलते हैं, और वे चाहते हैं कि एक नयें सन्यासीओं का वर्ग भी मुल्क में खड़ा हो, जो न किसी धर्म का हो, न किसी संप्रदायका हो, जो सिर्फ धर्म का हो । अबतक दुनिया में ऐसा हुआ नहीं । कोई संन्यासी जैन है, कोई सन्यासी हिन्दु है, कोई मुसलमान है । तो दूसरा एक सन्यासीओं का आर्डर order में खड़ा करना चाहता हूँ और करीब दो सौ सन्यासीओं और सन्यासीनियाँ मुझ से इस बात के लिये राजी हुए हैं कि मैं जिस दिन उन्हें आवाज दूँ, वे अपने अपने पंथ छोड़ के आ सकेंगे, और एक नयें सन्यासीयों का वर्ग, जो किसी धर्म का नहीं जो सिर्फ धर्म का है वह गांव गांव जाय, और जीवन को बदलने की सारी खबरें वहां तक पहुँचायें। तो दूसरा एक संगठन सन्यासीयों और सन्यासीनियों का और वे भी जब चाहे कोई चाहें, कि सन्यास से ऊब गया है तो तत्क्षण गृहस्थ हो जाय, और वह अपमानजनक नहीं होगा । उसकी कोई पाबन्दी और बन्दी नहीं होनी चाहिये । तब कोई भी युवक युनिवरसीटी से निकले, और दो वर्ष सन्यासी रहना चाहे तो सन्यासी रहे, दो वर्ष सन्यास का जीवन देखे, पहचाने । वापिस लौट आए । उससे कोई बाधा नहीं।

तीसरी बात । जगह जगह छात्रावास खड़े करने की मेरी योजना है । जहां विद्यार्थी रहे । पढे वे कहीं भी ।

लेकिन उनकी जीवन चर्या को बदलने के लिये छात्रावास खड़े किये जाय जहां उनकी जीवन चर्या बदली जा सके।

इन तीनों काम करने के लिये जीवन जागृति केन्द्र का विराट संगठन हों। गाँव गाँव में उसकी शाखा जगह जगह उसके केन्द्र। तब ही उन तीनों कामों को जीवन जागृति केन्द्र कर सके इस दिशा में आप सोचें और ध्यान रखें। मैं उसे कोई धार्मिक संगठन नहीं बना रहा हूँ। और ध्यान रखे यह संगठन यह सामाजिक क्रान्ति का संगठन है। और इसे हम किस तरह से बनाये, किस तरह से विकसीत करें कि दश या पन्द्रह वर्ष में देश की सामाजिक चेतना में एक स्थायी परिवर्तन खड़ा किया जा सके। एक छाप जीवन में छोड़ी जा सके और जीवन को बदलने की दिशा में कुछ खिड़कियाँ खोली जा सके। यह खोली जा सकती हैं।

इस सम्बन्ध में मैं चाहुँगा कि कार्यकर्त्ताओं का तीन दिनों का एक शीबीर ले लूँ ताकि प्रत्येक पहलू पर अपनी बात मैं कह सकूँ और आपकी बात सून सकूँ। और फिर हम उसके बाबत व्यापक काम में जुड़ सके।

—:०:—

प्रकाशक : **श्रीकस्तुरलाल गांधी** युथफोर्स, बम्बई *c/o.* जीवनजागृतिकेन्द्र
एम्पायर बिल्डिग, दादाभाई नौरोजी रोड, **बम्बई**-१
मुद्रक : ग्र० ना० धर द्विवेदी, राष्ट्रभाषा प्रेस, **बम्बई**–२६